THE TIMES OF INDIA

Date:17-12-22

Big B, Bigger Message

Govts can't join 'outrage brigade' targeting films

TOI Editorials

A political war of words has very, very predictably broken out over Amitabh Bachchan's comments at a Kolkata film festival inauguration. The veteran actor drew attention to how moral policing and checks on freedom of expression hamstring India's entertainment industry today. A look back at how hurt-sentiment brigades have targeted most big releases this year establishes the factuality of Bachchan's statements. As this is neither a new phenomenon nor unique to any particular ideological dispensation, all political posturing against it is hypocritical to the point of absurdity. It is beyond this posturing that the stakes are real and high.

After a two-year slump and thanks in large part to southern surprises, 2022 will have a cheery box office report. Like every other entertainment industry, India's opportunities are more global than before and so is the competition obviously. The public sphere that now includes a raucous social media is also more Babelic than ever. This means that outrage against some title, some song, some dialogue … will only rise and rise. This is freedom of expression. This is fine. Governments have an altogether different role – helping India's economic and soft power grow alongside the industry.

In 2018, the Supreme Court had hauled up four states for crippling the exhibition of Padmaavatafter it had already been certified by the censor board. This is what MP home minister Narottam Mishra, demanding changes in the upcoming Pathaan, must be reminded today. Even as the film is accused of disrespecting "Hindu sentiments" for featuring a saffron-coloured bikini, on the other side the MP Ulema Board is calling for its ban for hurting "Muslim sentiments". Governments have to safeguard the industry from being ground up between sundry opinions. Protect ease of doing business – and audiences' freedom to choose.

Date:17-12-22

Medical Manna

Public health must offer incentives to recruit doctors

TOI Editorials

The increase in undergraduate medical seats from 53,000 in 2014 to 96,000 in 2022 and postgraduate seats from 31,000 seats to 63,000 raises hopes that India's problem of too few doctors in rural areas and backward states can be fixed. India's 9 active doctors per 10,000 population trail China (22), US (26) and UK (30) but at our current pace of adding nearly 1 lakh doctors a year, these deficits will be wiped out in 10-20 years. More importantly, with thousands of new doctors, the public health system must grow massively to absorb them into its ranks.

Between 2011 and 2021, government medical seats have increased faster, from 18,000 to 48,000 seats, while private seats went from 22,000 to 44,000. Graduates from government colleges have bonds mandating rural service for 1-2 years. But offering government jobs at attractive salaries can keep them invested and correct the skew of graduating doctors preferring cities.

Migration of medical graduates from south to north could help. All southern states have over 10 UG seats per 10,000 population because they invested early in medical education. Corresponding numbers in UP and Bengal are 4, Bihar and Jharkhand 2. But UP, along with Tamil Nadu, has the most medical seats and Bihar is among the states recording highest increase in private medical seats. GoI is prioritising new medical colleges in underserved areas. These are positive trends. However, while quantity gets addressed thus, ensuring quality medical education could prove tougher.

THE ECONOMIC TIMES

Date:17-12-22

3 Criteria to Succeed: Talent, Talent, Talent

Succession planning key to businesses

ET Editorials

NR Narayana Murthy deserves credit for his admission that he was 'completely wrong' in not allowing Infosys' founders' children to take up active roles in the company he co-founded. He said that the move, had it been allowed, would have eased the succession process. It turns the spotlight on the leadership and succession planning challenges faced by Indian promoters. The predominant view that professional managers are somehow more successful than family members in running a business is misplaced. Likewise, the notion that letting family members take up top jobs may degrade the level of commitment and the sense of ownership among employees and lead to higher attrition rates is baseless. Of course, no undeserving candidate should be inducted in an organisation simply because of family ties. Talent should not be barred just because of genes, but checks must be in place that weed out any nepotism.

Competency holds the key for hiring the best talent that offers itself to fill top positions. This is where sound methods of selection by an independent board count. Candidates who would best address the interests of the company and the shareholders, rather than just the promoters', should make the cut. An independent board must also have the willingness to rock the boat in pursuit of management accountability to shareholders.

It is equally important for a selected family member to earn the respect of employees and let them know that she or he has the requisite skills to keep running and growing the business. Many of India's biggest companies have grown through competencies enhanced within the family tree. Succession planning is key to businesses, and shareholders do see value in accepting their promoters' influence across generations.

दैनिक भास्कर

Date:17-12-22

शराबखोरी के खिलाफ प्रबुद्ध वर्ग चेतना जगाए

संपादकीय

शराबखोरी को कई बार कानून बनाकर रोकने की कोशिश होती है। शराब गैर-कानूनी रूप से बिके, अवैध रूप से बनाई जाए, नकली / जहरीली शराब से लोगों की मौत हो तो सरकार को इस बात के लिए दोषी माना जाएगा। लेकिन क्या सिर्फ सरकार को दोषी मानना सही है? एक तर्क है कि जहां अमीरों को ज्यादा पैसे खर्च कर अच्छी शराब उपलब्ध हो जाती है, वहीं ये गरीब घटिया और जहरीली शराब पीने और मरने को मजबूर होते है। ऐसा तर्क देने वाले यह नहीं सोचते कि शराबखोरी की कीमत अमीर के लिए वही नहीं होती जो एक गरीब के लिए। गरीब का परिवार उजड़ता है, बच्चे पैसे के अभाव में स्कूल नहीं जाते, घर का वातावरण दूषित होता है और शांति गायब हो जाती है। लिहाजा अगर कानून इजाजत नहीं देता तो इसलिए कि उस घर के मुखिया को छोड़ पत्नी और बच्चे भी नहीं चाहते कि उनका पति या पिता मजदूरी कर 200 रुपए कमाए और उसमें से 100 रुपया शराब पर और बाकि लड़ाई-झगड़ा कर थाना पुलिस और मुकदमे में खर्च करे। समय है जब समाज का प्रबुद्ध वर्ग और राजनीतिक दल का जो तबका शराब की तस्करी और नकली / जहरीली शराब बनाने पर प्रभावी रोक न लगाने पर सरकार को कटघरे में खड़ा कर रहा है वह समाज में भी नई शराबखोरी के खिलाफ नई चेतना लाने की कोशिश करे।

Date:17-12-22

सभी के लिए एक नागरिक संहिता में बुराई क्या है?

मकरंद परांजपे, (जेएनयू में प्राध्यापक)

जैसे ही राजस्थान के भाजपा सांसद किरोड़ी लाल मीणा ने राज्यसभा में समान नागरिक संहिता यानी यूसीसी को प्रस्तुत किया, अल्पसंख्यकवादी सेकुलर-लॉबी सक्रिय हो गई। उनका मकसद स्पष्ट था। वे इस विधेयक और उसके प्रस्तोता दोनों को अमान्य करना चाहते थे। राष्ट्रीय दैनिकों और पोर्टलों में इस आशय के शीर्षक दिखाई देने लगे कि 'यूसीसी पर राज्यसभा में अराजकता!' या 'भाजपा के राज्यसभा सांसद के कारण विपक्षी बेंचों पर कोलाहल हुआ!' विधेयक में व्यवधान डालने की कोशिशों के बावजूद उसे सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया और 63 सदस्यों ने उसके पक्ष और 23 ने विपक्ष में वोट डाले। कोई भी सजग नागरिक पूछ सकता है कि आखिर इस पर कोलाहल क्यों हुआ? गौर करने वाली बात यह है कि अलग-अलग पर्सनल लॉ ब्रिटिश राज की विरासत हैं। यह उनकी बांटो और राज करो की प्रशासनिक नीति के अनुरूप था। मजे की बात है कि आज गोवा ही इकलौता ऐसा राज्य है, जहां यूसीसी है, जबकि वह पुर्तगाली उपनिवेश था।

स्वतंत्र भारत में यूसीसी लाने की कोशिश की गई थी और इसे प्रधानमंत्री नेहरू और कानून मंत्री आम्बेडकर का समर्थन प्राप्त था। लेकिन इसके बजाय हिंदू कोड बिल लाया गया। संविधान ने सिखों, बौद्धों और जैनों को भी हिंदू की श्रेणी में रखा था। मुस्लिम, ईसाई और पारसी इससे बाहर रखे गए। इसका खामियाजा इन समुदायों की स्त्रियों ने ही सबसे ज्यादा भुगता, जैसा कि बाद में शाहबानो मामले में देखा गया। तीन तलाक का उन्मूलन इसी कड़ी में देरी से किया गया भूलसुधार था। इस साल कई राज्यों में यूसीसी पर फिर से बहस गर्म है। इनमें उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड, गुजरात और केरल शामिल हैं। यूसीसी का सबसे कड़ा विरोध ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और ऑल इंडिया मजलिस-ए-इत्तेहाद-उल मुस्लिमीन या एआईएमआईएम द्वारा किया जा रहा है, जो इसे असंवैधानिक और अल्पसंख्यक-विरोधी बता रहे हैं। तथाकथित सेकुलर आलोचक भी इससे सहमत हैं। जैसी कि उम्मीद की जाती है, विदेशी मीडिया ने भी इस पर अपना रुख जाहिर कर दिया है और इसे देश पर हिंदुत्व थोपने की एक और कोशिश बताया है।

जहां तक विधेयक को प्रस्तुत करने का सवाल है तो हमें याद रखना चाहिए कि यह एक निजी सदस्य बिल था, जिसे किसी राजनीतिक दल का अधिकृत समर्थन नहीं था। वैसे भी प्राइवेट मेम्बर्स बिल आसानी से कानून नहीं बनता है। वह अमूमन लम्बित विधेयकों के ठंडे बस्ते में चला जाता है। विधेयक का विरोध करने वाले पूछ रहे हैं कि किरोड़ी लाल मीणा कौन हैं। उन्हें बताया जाना चाहिए कि 70 वर्षीय वयोवृद्ध राजनेता न केवल एमबीबीएस हैं, बल्कि अपने राज्य और समुदाय में वे बहुत सम्मानित भी हैं। उन्होंने दूसरी बार यह विधेयक रखने का प्रयास किया है। मार्च 2020 में भी वे एक बार इसकी कोशिश कर चुके थे।

राज्यसभा में विधेयक का विरोध करते हुए द्रमुक के तिरुचि शिवा ने कहा कि यह सेकुलरिज्म के विरुद्ध है। क्या उन्हें नहीं पता कि यूसीसी एक नीति निर्देशक सिद्धांत के रूप में हमारे संविधान का अनुच्छेद 44 है। उसमें कहा गया है कि राज्यसत्ता पूरे भारतीय परिक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता को सुनिश्चित करेगी। यानी संविधान के अनुसार यूसीसी को प्रस्तुत और लागू करना भारतीय गणराज्य का दायित्व है। तो क्या हमारा संविधान ही सेकुलरिज्म के विरुद्ध है? विधेयक को रोकने के लिए यह भी कहा गया कि इससे देश बंटेगा और उसकी संस्कृति-बहुलता को ठेस

पहुंचेगी। तो क्या देश की एकता तभी कायम रहेगी, जब अल्पसंख्यकों के लिए पृथक से नियम होंगे? और क्या भारतीय विविधता का यह अर्थ है कि कानून की नजर में अलग-अलग समुदायों के साथ अलग-अलग व्यवहार किया जाए?

आखिर विवाह, तलाक, उत्तराधिकार आदि से जुड़े मामलों में सभी धर्मों-समुदायों के लोगों के लिए एक समान कानून में क्या बुराई है? इसका यह मतलब नहीं है कि परम्परागत रीतियां समाप्त हो जाएंगी। इससे इतना ही होगा कि अगर किसी नागरिक को लगता है कि उसके साथ जुल्म हो रहा है तो वह अपने लिए न्याय की तलाश कर सकता है। नगालैंड, मेघालय, मिजोरम जैसे विशिष्ट क्षेत्रों के स्थानीय नियम-कायदों की तो संविधान खुद ही रक्षा करता है। यह बात अब धीरे धीरे स्पष्ट हो रही है कि यूसीसी का समय आ चुका है।

दैनिक जागरण

Date:17-12-22

जायज है मतांतरण पर चिंता

हरेंद्र प्रताप, (लेखक बिहार विधान परिषद के पूर्व सदस्य हैं)

देश में अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था है, लेकिन इस्लाम या ईसाई पंथ में मतांतरित होने पर उनके लिए आरक्षण को लेकर बहस जारी है। इस पर केंद्र सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में दो-टूक जवाब दिया है कि मुस्लिम और ईसाई पंथ में मतांतरित दलितों को आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए। सरकार ने 'संविधान, अनुसूचित जातियां आदेश, 1950' का हवाला देकर कहा है कि उस आदेश में इस्लाम और ईसाई पंथ के लोगों को इस कारण उससे बाहर रखा, क्योंकि ये दोनों पंथ यह दावा करते हैं कि उनके यहां छुआछूत वाली व्यवस्था नहीं हैं, इसीलिए जनगणना के कालम में इसका उल्लेख नहीं किया जाता, जबकि हिंदू, सिख और बौद्ध धर्म के अलावा अन्य पंथ मानने वाले अनुसूचित जाति के लोगो को इसमें शामिल ही नहीं माना जाता। यानी अनुसूचित जाति के लोग जैसे ही इस्लाम या ईसाई पंथ स्वीकार करते हैं, वैसे ही वे अनुसूचित जाति नहीं रह जाते।

मतांतरण के बाद आरक्षण का यह पहलू इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए पहले से ही कई प्रविधान हैं और दूसरा पंथ अपनाने के बाद आरक्षण के लाभ की स्थिति में दोहरे फायदे की बात आती है। यह कई लोगों के लिए मतांतरित होने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है। आंकड़े भी इसकी पुष्टि करते हैं। बिहार का उदाहरण लें तो विगत दो दशकों में सेक्युलर और समाजवादियों की सरकार में भी बिहार ईसाइयों की वृद्धि के मामले में अरुणाचल-370.41 प्रतिशत, सिक्किम-351.29 प्रतिशत के बाद तीसरे स्थान पर है। बिहार में ईसाइयों की संख्या में करीब 351 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। बिहार के मधुबनी जिले में 8055, औरंगाबाद में 3420, दरभंगा में 2406 तथा शेखपुरा में 2135 प्रतिशत ईसाई जनसंख्या वृद्धि दर्ज की गई। जबकि इन जिलों में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या नगण्य है। अतः ईसाई पंथ में मतांतरित होने वाले अनुसूचित जनजाति के नहीं, बल्कि अनुसूचित जाति या अन्य जाति के लोग हैं। बिहार की राजधानी पटना से सटे नौबतपुर में फादर जय प्रकाश मसीह ने स्वीकार किया कि शौचालय, कंबल और

मच्छरदानी का लाभ देकर वे लोगों को ईसाई बना रहे हैं। इसका दूसरा पहलू पंजाब, हरियाणा, चंडीगढ़, दिल्ली और पुडुचेरी में देख सकते हैं, जहां आदिवासी हैं ही नहीं। वर्ष 1971 से 2011 के बीच राष्ट्रीय स्तर पर ईसाई जनसंख्या वृद्धि दर 95.59 प्रतिशत थी। अगर इन पांच में से चार राज्यों को देखें तो पंजाब में 114.68, चंडीगढ़ में 248.24, हरियाणा में 413.70 तथा दिल्ली में 234.15 प्रतिशत ईसाई जनसंख्या वृद्धि दर रही।

संप्रति कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो अमूमन हिंदू समाज का कोई वर्ग मुसलमान नहीं बनता, परंतु जहां तक ईसाई पंथ का सवाल है तो देश में अनुसूचित जनजाति और अन्य वर्ग के लोग ईसाई पंथ में मतांतरित हो रहे हैं। इस लक्षित मतांतरण से कुछ वर्गों की चिंता स्वाभाविक दिखती है। मतांतरण के साथ ही कुछ समुदायों विशेषकर मुस्लिमों की बढ़ती जनसंख्या को लेकर भी कुछ वर्ग चिंता जताते रहते हैं। मुस्लिम जनसंख्या में वृद्धि मुख्य रूप से बांग्लादेश से हो रही घुसपैठ, मुसलमानों में बहुविवाह प्रथा तथा अधिक संतानें पैदा करने से हो रही है। इस चिंता के पीछे अतीत के घाव भी जिम्मेदार है। अंग्रेजों यानी ईसाइयों ने भारत पर अत्याचार किए। भारतीय अर्थव्यवस्था को बर्बाद किया। इस्लामिक मुगल शासकों ने भारत के सनातन पूजा स्थलों को ध्वस्त किया तथा बलात मतांतरण कराया। इस्लाम ने तो 1947 में भारत का विभाजन तक करा दिया। स्वतंत्र भारत में इन दो पंथों के विरुद्ध हिंदुओं-सिखों में स्वत: स्फूर्त आक्रोश था। अतः संविधान निर्माताओं ने संविधान में अनुच्छेद-25 का समावेश करते हुए 'अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता' तथा अनुच्छेद-26 में 'धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता' का प्रविधान किया। हालांकि, संविधान निर्माताओं का यह डर गलत साबित हुआ। हिंदुओं और सिखों ने मुसलमानों और ईसाइयों का मतांतरण नहीं कराया। अलबत्ता मुसलमान और ईसाई जिस प्रकार पहले मतांतरण करवाते थे, वैसे ही आज भी करवा रहे है। ईसाइयों की 'चंगाई सभाओं' का आयोजन खुलेआम छल-कपट है। यह किसी से छिपा नहीं कि छल-कपट-प्रलोभन और तलवार के बल पर इन्होंने पूरे विश्व में अपने पंथ का विस्तार किया। वास्तव में, इन समुदायों ने राज्य संरक्षण की आड़ में अपने पंथ का विस्तार करने की नीति ही अपनाई। इसी कड़ी में वे अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों पर डोरे डाल रहे हैं। चूंकि अनुसूचित जाति की जनगणना में मुसलमान और ईसाई का कोई कालम ही नहीं होता, तो वे अपना बचाव करते हैं कि हम उनका मतांतरण नहीं करवाते हैं। जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार आदि का लालच देकर तेजी से मतांतरण का खेल जारी है।

मतांतरण राष्ट्रांतरण होता है। यह 1947 में प्रमाणित हो चुका है और बीते दिनों सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी में प्रतिध्वनित भी हुआ। भारत का वह हिस्सा पहले ही विलग हो चुका है, जहां मुस्लिम बहुतायत में थे। यही आशंका ईसाई बहुल इलाकों को लेकर भी गहरा रही है। संविधान बनाते समय मुसलमानों तथा ईसाइयों पर दबाव डालकर उनका पंथ परिवर्तन कराने की आशंका न केवल निर्मूल साबित हुई, बल्कि इस मामले में तो उलटी गंगा बह रही है। समय की मांग है कि संवैधानिक व्यवस्था से स्पष्ट किया जाए कि सभी को अपना पंथ मानने की स्वतंत्रता तो रहेगी, परंतु किसी भी व्यक्ति को अब इस्लाम और ईसाई पंथ में मतांतरित होने पर उसकी नागरिकता समाप्त कर दी जाएगी।

जनसत्ता

Date:17-12-22

आनुवंशिक फसलों से पैदा होते खतरे

विनोद के. शाह

अब सर्वोच्च न्यायालय को जीएम यानी आनुवंशिक सरसों में फूल आने से पहले नष्ट करने संबंधी याचिका पर निर्णय करना है। देश में जीएम सरसों डीएमएच-11 की व्यावसायिक खेती पर रोक लगाने का मामला विचाराधीन है। याचिकाकर्ता ने इसके फूलों और बीज से पर्यावरण को खतरा बताया है। देश में आनुवंशिक फसलों की व्यावसायिक खेती की अनुमति को लेकर पिछले दो दशक से विभिन्न मंचों पर बहस जारी है। देश के अधिकांश पर्यावरणविद और कृषि विशेषज्ञ आनुवंशिक परिवर्तित खेती में फायदा कम, नुकसान अधिक मानते आए हैं। मगर सरकार ने जेनेटिक इंजीनियरिंग मूल्यांकन समिति जीईएसी से व्यावसायिक खेती के लिए जीएम सरसों को मंजूरी मिलते ही इसके उत्पादन की मौन स्वीकृति दे दी थी। इसे विकसित करने वाले संस्थान ने प्रयोग के लिए बीज भी उपलब्ध करा दिया था। विवाद होने के बाद भी यह खयाल नहीं रखा गया कि उत्पादन संबंधी प्रयोग खुले में करने के बजाय ग्रीन हाउस में किया जाए।

पिछले बीस वर्षों से जीएम सरसों के पर्यावरण पर पड़ने वाले कुप्रभाव को लेकर विरोध हो रहा है। सन 2002 में भारत में इसके बीज को भारतीय किस्म वरुणा को पूर्वी यूरोप की किस्म अर्ली हीरा-2 से आनुवंशिक संरचना में परिवर्तन कर तैयार किया गया था। सन 2017 में भारत की जेनेटिक इंजीनियरिंग अनुमोदन समिति ने देश में इस जीएम सरसों की व्यावसायिक खेती करने की इजाजत दी थी। मगर सुप्रीम कोर्ट में इससे पर्यावरणीय खतरों की आशंका को लेकर पर्यावरणविदों द्वारा दायर याचिका के बाद मामला अदालत में लंबित है। देश के कृषि अनुसंधान केंद्रों और सरकार ने भी तब से लेकर अब तक इसे लेकर न तो बहुत अधिक प्रयोग कराए और न ही इसके संबंध में देश के किसानों और जानकारों से राय लेने कि कोशिश की गई है। बल्कि एक बार फिर इसके पक्ष में यह कह कर व्यावसायिक अनुमति दे दी गई कि इस किस्म की खेती से देश में तिलहन के उत्पादन में पहले के मुकाबले तीस फीसद की बढ़ोतरी हो जाएगी। दलील यह भी है कि कनाडा, यूरोप और चीन में सरसों की बयासी फीसद खेती आनुवंशिक बीजों से ही होती है, जहां उत्पादन बहुत अधिक है। जबकि पर्यावरणविदों का मानना है कि संशोधित आनुवंशिक बीजों ने उपयोगकर्ता देशों की परंपरागत सरसों की फसल पर अतिक्रमण कर लिया है।

भारत में 2020-21 में खाद्य तेल की खपत में सरसों तेल की हिस्सेदारी 14.1 फीसद थी। 2021 में सरकार ने अकेले पाम और सूरजमुखी तेल के आयात पर उन्नीस अरब डालर की राशि खर्च की। भारत दुनिया का सबसे बड़ा खाद्य तेल का आयातक है। रूस-यूक्रेन युद्ध की वजह से भारत की चिंता बढ़ी है। यही कारण है कि केंद्र सरकार पर्दे के पीछे रह कर इस विवादित मुद्दे पर बहुत अधिक परिणामों को जाने बगैर इसकी व्यावसायिक खेती बढ़ाने में जल्दबाजी कर रही है। देश के पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के लगभग पचहत्तर लाख हेक्टेयर कृषि क्षेत्र में सरसों की खेती हो रही है। साथ ही इस फसल के फूलों के माध्यम से देश के कुल शहद उत्पादन का साठ फीसद तैयार हो रहा है। जलवायु परिवर्तन की वजह से विगत दो वर्षों में उत्तर भारत में समय पूर्व तेज गर्मी से गेहूं और दलहन का औसत उत्पादन घट रहा है। इसके चलते इस क्षेत्र का किसान कम समय में तैयार होने वाली सरसों की फसल में रुचि लेने लगा है।

भारत में प्रचलित बीजों के माध्यम से सरसों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर एक हजार से बारह सौ किलो माना गया है। जबकि वैश्विक उत्पादन, जो कि आनुवंशिक बीजों से होता है, प्रति हेक्टेयर दो हजार से बाईस सौ किलोग्राम माना जाता है। देश का किसान पर्याप्त सिंचाई उपलब्धता और नई बीज किस्मों से अब प्रति हेक्टेयर अठारह सौ किलो तक उत्पादन लेने लगा है। जीएम सरसों की संरचना को शाकनाशियों के प्रति अत्यधिक सहनशील बनाया गया है, क्योंकि माना जाता है कि खर-पतवार के कारण सरसों फसल के उत्पादन में गिरावट आती है। इस फसल से खर-पतवार को नष्ट करने के लिए ग्लूफोसिनेट अमोनिया समूह का उपयोग अत्यधिक मात्रा में किया जाता है, जो कि जीव, जीवन और पर्यावरण के लिए खतरनाक है। इसके इस्तेमाल से खेतों में काम करने वाले मजदूरों और जानवरों को स्वास्थ्य संबंधी परेशानियां पैदा होती हैं। सरकार को इस पर भी विचार कर लेना चहिए।

मृदा जलसंरक्षण एवं अनुसंधान संस्थान देहरादून की पूर्व प्रकाशित एक अध्ययन रिपोर्ट में बताया गया है कि अत्यधिक कीटनाशकों, उर्वरकों और खरपतनाशी के प्रयोग से प्रतिवर्ष देश के बड़े हिस्से की उपजाऊ मिट्टी नष्ट होकर बंजर भूमि में तब्दील हो रही है। जहरीले रसायनों के कुप्रभाव से देश की औसतन प्रति हेक्टेयर 16.4 टन मिट्टी जैविकता खो देती है। भारत सरकार एक तरफ शून्य बजट जैविक खेती की बात करती है, मृदा स्वास्थ्य योजना की बात करती है, तो दूसरी तरफ जीएम सरसों को पिछले दरवाजे से खेती की अनुमति देती है, जिसमें खरपतनाशियों का अंधाधुंध इस्तेमाल होने की भरपूर संभावना है। बीटी कपास के परिणाम देश के सामने हैं। सरकारी आकड़ों पर गौर करें तो बीटी कपास की खेती से देश में कपास उत्पादन दस गुना बढ़ा है। मगर इसके विपरीत फसलों में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशकों, उर्वरकों और खरपतनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से किसानों की उत्पादन लागत कई गुना बढ़ गई है। देश में पहले के मुकाबले बीटी कपास में चालीस फीसद अधिक कीटनाशकों का प्रयोग हो रहा है। बीटी कपास के बीज के लिए किसान पूर्णतया बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर आश्रित हैं। बीटी कपास फसल पर देशी और प्राकृतिक कीटनाशक निष्प्रभावी हैं। इसलिए इनके लिए किसानों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रसायनों पर पूरी तरह आश्रित रहना ही एकमात्र विकल्प है। बीटी कपास की फसलों में काम करने वाले देश के मजदूरों में त्वचा संबंधी रोग तेजी से उभर कर सामने आए हैं।

आनुवंशिक बीजों से पैदा होने वाली फसलों में पौध उत्पादन की क्षमता मात्र चालीस फीसद तक होती है। इस स्थिति में किसान अपने बीज उत्पादन में अक्षम साबित होता है। उसे बीज के लिए पूरी तरह बाजार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे खेती में उत्पादन लागत कई गुना बढ़ रही है। पर्यावरणविदों की यह चिंता अकारण नहीं है कि खरपतनाशी के अत्यधिक उपयोग का असर मधुमक्खियों की प्रजनन क्षमता पर पड़ेगा, अन्य फसल मित्र कीट-पंतगे,

जो अन्य फसलों के फूलों में परागण की मदद करते हैं, खरपतनाशी का इस्तेमाल इनके जीवन पर खतरा साबित होगा, जिससे अन्य फसलों की उत्पादन क्षमता भी प्रभावित होगी।

वर्ष 2002 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने जीएम सरसों के बीज संबंधी अर्जी यह कह कर खारिज कर दी थी कि मैदानी परिक्षणों में फसल बेहतर उत्पादन नहीं देती है। विकसित जीएम सरसों डीएमएच-11 के उत्पादन आंकड़ों के मुकाबले भारतीय फसल बीज वरुणा के उत्पादन आंकड़े बेहतर रहे हैं। अब डीएमएच-11 का अनुसंधान बीस साल पुराना हो चुका है, जबकि विकासशील देश डीएमएच-4 का उपयोग कर रहे हैं। भारत में उपयोग की जाने वाली जीएम सरसों डीएमएच-11 वैश्विक स्तर पर पुरानी पड़ चुकी है। जबकि पूर्णता स्वदेशी कृषि अनुसंधान केंद्र में विकसित पूसा डबल जीरो 31 का उत्पादन बाईस सौ किलो प्रति हेक्टेयर आ रहा है। ऐसे में सरकार को देश में जीएम सरसों की अनुमति के बजाय भारतीय विश्वविद्यालयों और अनुसंधान केंद्रों में विकसित पूर्णतया स्वदेशी किस्मों को बढ़ावा देना चहिए।